तृतीय अध्याय

* निम्नवर्ग का आर्थिक पक्ष *

अध्याय - 3

" निम्नवर्ग का आर्थिक पक्ष "

विषय प्रवेश :-

प्राचीन काल में भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से समृध्द था। कहा जाता है कि यहाँ सोने का धुआँ निकलता था, दूध-दहीकी नदियाँ बहती थी। इसका अर्थ हम संकुचित दृष्टि से भी लें तो इतना सत्य है कि पदार्थ प्रचूर मात्रा में उपलब्ध थे। किन्तु आक्रमणकारियों ने देश की सम्पति को दोनों हाथों से लूटा। फलतः हमारे देश की आर्थिक स्थिति बिगडती गयी। ब्रिटिशोंने तो भारत का इतना अधिक आर्थिक शोषण किया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के चालीस-पैंतालिस सालके पश्चात् भी आर्थिक संरचना को प्रौढ़ और सम्पन्न करने में हमारी सरकार असमर्थ रही है।

आर्थिक स्थिति बिगडने के कारण :-

ब्रिटिशों का उद्देश्य भारत में राजकीय सत्ता प्राप्ति के साथ भारत का आर्थिक शोषण करना भी था। इसलिए उन्होंने एक ओर देशी उद्योग-धन्दों का समूल नाश किया और दूसरी ओर नये यान्त्रिक उद्योग-धन्दे स्थापित किये। फलतः देश के छोटे-छोटे कारागिरों के लघु-कुटीर उद्योग बन्द हो गये। भारत मुख्यतः कृषिप्रधान देश है। ब्रिटिश सरकार की शोषण नीति के कारण यहाँ के किसानों की स्थिति भी दिनोंदिन दयनीय होती गयी। इतनी दयनीय कि अपना पेट भरने के लिए-परिवार पालन के लिए उन्हें जमींदारों तथा महाजनों का गुलाम बनना पडा। इसके अलावा खेती में अकाल या बाढ़ के कारण उपज का कम होना, बेरोजगारी, आर्थिक भ्रष्टाचार, बढ़ती हुई मँहगाई एवं जनसंख्या, वैज्ञानिकता और प्राचीनता का संघर्ष, भौतिक सुविधाओं का असमान वितरण और अज्ञान आदि कारणों से भारत के गाँवों की आर्थिक स्थिति जर्जर होती गयी।

औद्योगिक विकास ने पूँजीवाद को जन्म दिया, जिससे देश की अर्थव्यवस्था केन्द्रित होकर समाज मुख्यतः शोषक और शोषित वर्ग में विभाजित हो गया। इन दो वर्गों में द्वेष की भावना

बढ़ती गयी, कारण दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद भी श्रमिक वर्ग को रोजी-रोटी तथा जीने की सुविधा प्राप्त करना मुश्कील हो गया। गाँव टूटते गये और किसानों तथा कारागिरोंको मजदूर बनकर शहरों के घिनौने परिवेश में अपना अभिशप्त जीवन बिताना पड़ा। उल्टे पूँजीपति धन के बलपर श्रम को खरीदकर अत्याधिक लाभान्वित हो गये और भारत का यह मैला आन्चल शहरों में कौड़ियो के मोल में खरीदा जाने गा। बेकारी तथा निर्धनता अन्योन्याश्रित है। बेकारी से निर्धनता-गरीबी और गरीबी से अज्ञान का चक्र तब से आज तक चल रहा है।

अर्थ की महत्ता तथा सर्वव्यापकता :

मनुष्य चाहे किसी भी युग का हो वह अपना जीवन सुखमय बनाना चाहता है। और जीवन को सुखमय बनाने का साधन "अर्थ" है, इसे हम महाभारत काल से मानते आए है। वर्तमान संदर्भ में तो अर्थ ही परब्रह्म की तरह निरपेक्ष सत्य बन बैठा है। सृजन से लेकर आस्वादन तक की साहित्यिक प्रक्रिया अर्थापेक्षी होती है। बिना अर्थ के माध्यम से साहित्य का लेन-देन असंभव हो जाता है। मानवीय स्तर पर चलनेवाले सभी संघर्षों की जड़ अर्थ याने सम्पति, सोना, जमीन, मिलकियत आदि ही है। "आकाश से बरसा पानी जिस तरह सागर में जा मिलता है उसी तरह हमारी सारी समस्याएँ "अर्थ" पर आकर ठप्प हो जाती है। ---- अतः हमारी हर श्रेणी की समस्या का समाधान आर्थिक समृध्दि में है।"[1] साहित्य में चित्रित हमारी समस्याएँ विविध भले ही हो परंतु उनका मुख्य कारण प्रायः आर्थिक ही होता है। पैसे की महिमा नेऽति, नेऽति की तरह अवर्णनीय है। वह अनुभव की चीज बन जाती है।

आर्थिक स्थिति :

निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति बड़ी जटिल है, वह आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित एवं पीड़ित तथा शोषित है। नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग की दृष्टि से मुख्यतः किसान-मजदूर और उपेक्षित स्त्रियों का समावेश होता है। इस वर्ग के आर्थिक पक्ष का अध्ययन करना हमारे तृतीय अध्याय का उद्देश्य है। इस अध्ययन में हमें देखना है कि निम्नवर्ग की आर्थिक दुर्दशा के कारण कौन-से है? अर्थाभाव के कारण उन्हें कौन-कौन सी समस्याओं का मुकाबला करना पड़ता हैं? उनकी आय के क्या-क्या स्त्रोत है, इसके साथ ही उनकी रहन-सहन, मकान, खान-पान आदि कैसे हैं। यहाँ हम नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित किसान-मजदूर और नारी के विविध रुपों को सम्मुख रखते हुए उनकी आर्थिक अवस्था का विवेचन करेंगे। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अपने युग के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्ति के साथ आर्थिक जीवन और उस से संबंधित समस्याओं पर प्रकाश डाला है। उन्होंने शहरों में चल रहे उद्योग-धंदो के आर्थिक जीवन की अपेक्षा गाँव के कृषि जीवन से संबंधित आर्थिक पक्ष का अधिक विस्तार के साथ वर्णन किया है। नागार्जुन ने समाज के विभिन्न वर्गों की

आर्थिक स्थिति का वास्तव चित्रण कर समाज के हित के लिए समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया है।

किसानों की आर्थिक दुर्दशा तथा उसके कारण :

खेती भारतीय अर्थव्यवस्था का आधारस्तंभ रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के कारण भारतीय खेती व्यवसाय और उसके अंग लघु-कुटीर उद्योग-धन्दे पूर्णतः बन्द हो गये थे। खेती और उद्योगों की एकता नष्ट होनेसे कारीगर-दस्तकार बेकार हो गए और ग्रामीण समाज की आत्मनिर्भरता समाप्त हो गयी। उदित हुआ जमींदार वर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधार-स्तंभ बन गया। महाजन तथा सूदखोर वर्ग और व्यापारी वर्ग सुखासिन हो गया। किसानों की आर्थिक दशा मात्र शोचनीय होकर वह अभावग्रस्तता का दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर हो गया। नागार्जुन का जन्म तथा जीवन निम्नवित्त वर्गीय किसान परिवार में होने तथा गुजरने से उन्होंने कृषक जीवन के दुःखों, कष्टों और आर्थिक मजबूरियों को नजदीक से देखा ही नहीं तो उनमें सहभागी भी रहे है। अतः वे अपने उपन्यासों में किसान मजदूर के पक्षधर बनकर उनकी आर्थिक दुर्दशा को संपूर्णता के साथ साकार किया है। साथ ही किसानों की ऐसी दुर्दशा होने के कारणोंपर तर्कसम्मत तथा वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रकाश ड़ाला है। और विशद किया है कि किसानों की आर्थिक अवस्था में सुधार हुए बिना उनकी अन्य समस्याएँ हल नहीं हो सकती। आर्थिक विवशता ही भारतीय किसानोंका जीवन नारकीय बनने का प्रधान कारण है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग की आर्थिक अवस्थापर परिणाम करनेवाले प्रधान कारण यह है-

1. भूकम्प, बाढ़ और अकाल :

भूकम्प, बाढ़ तथा अकाल यह प्राकृतिक आपत्तियाँ सदा से भारतीय किसानों को विपन्नता की खाई में ढ़केलती आयी है। बिहार प्रान्त के किसान तो इन ईश्वर-प्रदत्त संकटोंसे हमेशा जूझते आ रहे हैं, चूँकि नागार्जुन के अधिकांश उपन्यासोंका वर्ण्य विषय बिहार का जन-जीवन होने से उन लोगों की आर्थिक अवस्था पर बाढ़ एवं अकाल का जो महाभंयकर परिणाम होता है, उसका सहज और पर्याप्त चित्रण उनके उपन्यासों में हो गया है।

भूचाल आदि प्राकृतिक आपत्तियों के कारण किसान-मजदूरों की आर्थिक स्थिति गिरती ही है। "लोगों का कहना था कि भूकम्प (1934) के बाद देश की आबोहवा बदल गई है। नदियाँ, तालाब और पोखर उथले हो गए हैं। उपज कम होने लगी है। मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया है, अकाल मृत्यु बढ़ गई है। ---- आमों की फसल अब साल-साल नहीं आती।"[2] भूकंप के कारण स्वास्थ्य खराब होता है, बीमारियाँ फैलती है, फसलें नष्ट होती है साथ ही लोगों के जान-जानवर, माल-मकान को नुकसान पहुँचने से आर्थिक विपत्ति बढ़ती है। भूकम्प में महपूरा के खान बहादुर का

मकान गिर पड़ा तो बल्ली बाबू का घोड़ा दब गया। "सैकड़ों जान-माल बर्बाद हुए, पक्के मकानों की बस्तियाँ पहपट पड़ गई। --- देवी-देवता के मंडिल तक नही साबित बचे भैया।"[3] दुर्घटनाग्रस्त लोगों को सरकार की ओर से मिलने वाली मदद की रक्कम में नेता लोग सौदेबाजी करते है। भयावह दुखद आपत्ति में फूल बाबू जैसा कांग्रेस नेता मदद बाँटने में भ्रष्टाचार करता है। यह स्थिति आज भी मौजूद है। भूकम्प के खैरात की असलियत को महपूरा गाँव की विधवा कुन्ती पेश करती है- "बबुआ बोलो, भुइकंप यह क्या हुआ, बड़े लोगों के लिए आमदानी का एगो अउर रास्ता निकल आया----।" कुन्ती बलचनमा के कान में कहती हैं - " ---- देते हैं दो और कागज पर चढ़ाते है दस। इमान-धरम इनका सब डूब गया, तेल जरे तेली का और फटे मशालची का।"[4] गरीबों की आपत्ति में अपना उल्लू सीधा करने की नेताओं की भ्रष्टनीति और नैसर्गिक प्रकोप के कारण किसानों की आर्थिक अवस्था मात्र निश्चयही बदहावास हो गयी है।

भूकम्प के समान बाढ़ भी अपनी रौद्र लीला में किसान मजदूरों के जीवन का स्वत्व और सत्व पानी में बहा देती है और हतबल किसान अपना विनाश देखता रहता है। "वरुण के बेटे" उपन्यास के रंगलाल, बिसुनी और नीरस आदि के घर बाढ के कारण आठ-दस दिन तक पानी से भरे रहने के कारण काफ़ी नुकसान पहुँचा था। टमका-कोइली गाँव में आयी बाढ़ के कारण "आउँस" और "गम्हडी" धानों को नुकसान पहुँचा था। "अधिकांश खेत-मजदूर रोजी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोड़कर पूरब-पश्चिम जानेवाली रेलगाड़ियों पर सवार हो चुके थे।"[5] मजदूरों का ऐसी ही दुर्दशा "बाबा बटेसरनाथ" के रुपउली गाँव के बाढ़ से हो गयी थी। "यह बाढ़ उनके लिए भुखमरी का बिगुल बजाती आई थी। रास्ते बन्द थे, भागना भी आसान नहीं था।"[6] किसानों के खेती की खड़ी फसलें बरबाद होने से तयार खेती देखते-देखते उनके हात-मुँह से निकल गयी थी। भूकम्प की तरह बाढ़ की वजह भी बीमारियाँ फैलती है और तमाम लोगों जीना हराम करती है। टमका-कोइली और आस-पास के गाँव के सत्तर प्रतिशत लोगों को मलेरिया और कालाजार ने तबाह करदिया था। रुपउली गाँव में बाढ़ से फसली बुखार फैलने से कई लोगों की जानें गई थीं। "बाढ़ के अन्दर दबी पड़ी फसलों के सड़े-सूजे दाने सुखा लिए गए थे। पेट में पहुँचते ही उन्होंने अपना जहरीला असर फैलना शुरु कर दिया, कुछ गरीब इससे मरे थे।"[7] आपत्कालीन स्थिति में एक दूसरों को मदद करने की वृत्ति गाँववालों में अधिक है। "वरुण के बेटे" उपन्यास में मलाही-गोंढ़ियारी गाँव के मोहन माँझी, भोला, खुरखुन एवं मधुरी सभी आपदग्रस्तों की सहायता करने में व्यस्त है। दुखमोचन को तो "बाढ-पीड़ितों के सहायता-कार्य में मशगूल रहने के कारण क्षण-भर की भी फुरसत नहीं मिली थी।"[8] कुल-मिलाकर बाढ़ के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव से किसान-मजदूरों की औकात तथा हैसियत कमजोर हो गयी थी।

भूकम्प, बाढ़ की भयंकरता के गले में अकाल की विकरालता भी गला डालकर गरीब

किसान-मजदूरों का जीना दुभर करती है। रुपउली गाँव के किसानों की अकाल से जो दुर्दशा हो गयी है उसे देखते ही दिल दया और करुणा से पसीजता है। दुर्भिक्ष के कारण खाने को मिलना तक मुश्कील हो गया था कि "ममूली हैसियत के किसान शकरकंद बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे। खेत-मजदूर और जन-बनिहार आमकी सूखी गुठलियाँ चूर-चूरकर मडुआ का जरा-सा आटा उसमें मिलाकर टिक्कड़ बनाते और उसी से भूख की आँच को शान्त करते।"[9] सन 80 साले के भयावह दुर्भिक्ष में तालाब का पानी सुखने से लोग मछलियाँ और कछुओं को ही भूनकर बिना नमक के ही खाते है। मानवीय रुप-धारी बाबा बटेसर अकाल में लोगों की खाने की दुर्दशा का करुणाजनक वर्णन करते हुए कहते है - "---- पेट जलने लगा तो वही ईंट उठा-उठाकर लोग लाने लगे---- घर में औरतें ईंट का चूरन बनातीं पहले, पीछे उस चूरन का महीन पिसान तैयार कर लेतीं। आम, जामुन, अमरुद, इमली वगैरह की पत्तियाँ उबालकर पीस ली जाती।---- आम की गुठलियों का पिसान भी इसी तरह बरता जाता।"[10] अकाल से मजदूरों का हाल भी काफी खस्ता हो गया था। वे जंगली साग-सब्जी, घास-जड़ और पेड़ो की पत्तियाँ तथा छाल खाने को विवश हो गए थे। लेकिन रुपउली गाँव के मजदूरों को इसी तरह पेट भरना मुश्किल होने से गाँव छोड़कर जाना पड़ा। इसका फायदा रेल्वे कम्पनी ने उठाया था। कम मजदूरी देकर ज्यादा काम कर लिया जाता था। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद दुअन्नी दी जाती थी। स्पष्ट है कि लोग अकाल के कारण भूखे मर रहे थे और जो कुछ पेड़-पौधे मिलते थे उसे जानवर के समान खा रहे थे।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि भूकम्प, बाढ़ और अकाल जैसी प्राकृतिक तथा दैवी आपत्तियाँ भारतीय किसान-मजदूरों की कमर ही तोड़ देती है। इन आपत्तियों में पिसकर वह दिनों दिन विपन्न होकर भीखारी बनता गया है। यह निम्नवर्ग किसी भी प्रकार के आर्थिक बोझ को उठा न सकने के कारण साहूकारों के जाल की शिकार बनता है। नैसर्गिक आपत्तियों के कारण प्राणहानि और वित्तहानि होने से निम्नवर्ग के आर्थिक संकट बढ़ने से जीवन "नहींऽऽनहीं" की पूँजी बनती है।

2. <u>अशिक्षा और बढ़ती जनसंख्या</u> :

अज्ञान, गरीबी और बेकारी का दुष्टचक्र बराबर चलता रहता है। निम्नवर्गीय व्यक्ति अज्ञानी होने से परिवार की बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति बेफिक्र रहता है। वह बच्चों को भगवान की कृपा समझता है। जब कमानेवाला एक और खानेवाले दस होते है तब परिवार का आर्थिक संतुलन बिगड़कर निम्न श्रेणी का जीवन जीना पड़ता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक विकास योजनाओं के बावजूद भी लोकसंख्या की अतिरिक्त वृध्दि के कारण देश प्रगति नहीं कर पा रहा है। जनसंख्या की अधिकता के कारण ही मँहगाई और बेरोजगारी बढ़ने से निम्नवर्ग में बेचैनी और दयनीयता बढ़ रही है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में निम्नवर्ग में व्याप्त गरीबी और बेकारी का विस्तृत रुप में अंकन किया है। अज्ञानी किसान-मजदूरों के श्रम का शोषण दिन-दहाड़े होता है अतः उसे दो वक्त की रोटी मयस्सर होना कठीन हो गया है। "रतिनाथ की चाची" में शुभंकरपुर गाँव की स्थिति ऐसी ही है, "ढ़ाई सौ परिवारों की आबादी, खानेवाले मुँह ग्यारह सौ। साफ है कि गरीब ही अधिक थे। --- असलियत यह थी कि लूट लाओ, कूट खाओ।"[11] अमर्याद गरीबी का दृश्य "वरुण के बेटे" में भी दिखाई देता है। "मलाही-गोंढियारी में मछुओं के तीस-पैंतीस परिवार थे। खानेवाले मुंगों की तादाद तेजीसे बढ़ रही थी। ---- वे पास-पड़ोस के इलाकों में पाँच-सात कोस तक और कभी-कभी दस पन्द्रह कोस तक मछलियाँ पकड़ने निकल जाते थे।"[12] पहनने के लिए कपड़े न मिलने से बूढ़े भी अर्ध-नग्न रहते थें। लड़के दिन भर नंग-धड़ंग अवस्थामें केंकडे था कछुए खोजते रहते हैं। रसोई में काली हँाड़िया और जवान लड़कियों के शरीर पर फटी मैली धोतियाँ। मछुओं के जीवन की यह दयनीय हालत पाठक की संवेदनाको कुरेदती रहती है। आमतौर पर लोग अनपढ़ ही हैं। बलचनमा, कुल्ली राउत, भोला तथा खुरखुन को कभी स्कूल जाने को नही मिला। यह लोग श्रम की मज़दूरी से उपजीविका चलाते हे लेकिन उनके श्रम का शोषण होता है, उन्हें मजदूरी में ठगाया जाता है। भ्रष्टाचार से तंग आकर अपना भेट भरने के लिए कपड़े उतारकर देने की भी मुसीबत आती है। कोसी बांध पर मजदूरी करने गए टुन्नी को अपनी दुर्दशा बताने में शर्म लगती है कि - "---- कोसी किनारे गया मैं इसलिए कि दस रोज बाँध की मजूरी करुँगा, खाना-खेवा निकाल कर कम से कम अठारह आना-बीस आना रोज तो बचा ही लूंगा। चार-छै जून साथ के दाने चबा-चुबूकर भूख को ठगता रहा, फिर उधार की खिचड़ी चलने लगी। --- मिट्‌टी काटते-ढ़ोते बारह दिन बीत गए, छदाम का भी दरसन नहीं हुआ। ---- कुदाल रख ली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरवा ली। कमर से गमछा लपेटे दो दिन, दो रात का भूखा मैं घर लौट आया हूँ---।"[13] टुन्नी जैसे हजारों लोगों को रोजी-रोटी की तलाश में घर छोड़ना पड़ता है, अज्ञान के कारण ठगाया जाता है और यातनाएँ भुगतनी पड़ती है।

"बाबा बटेसरनाथ" में रुपउली गाँव के लोगों को भी उदर-निर्वाह के लिए मजूरी, मामूली काम करने पड़ते थे। गाँव के ढाई हजार लोगों को खाने के लिए जमीन की उपज पूरी नहीं पड़ती थी। रुपउली गाँव के "साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका गुजारा मजदूरी पर निर्भर था। वे काम के लिए पड़ोस के कई गाँवों तक चले जाते, ----- शहरों में कुलीगिरी या दूसरे मामूली काम करके यहाँ अपने परिवारों की जीविका चलतो थे। गन्ने का सीजन आता तो दस-पाँच जने चीने के कारखानों में अस्थायी काम पा जाते।"[14] लूट-खसोट, ठगाई के कारण रुपउली गाँव के लोगों का जीवन नारकीय बन गया था। दिन-भर की कड़ी मेहनत के बाद एक दुअन्नी हाथ आती थी। लोग आजीविका के लिए त्रस्त हो गये थे। बलचनमा भी अपने निर्धनता की करुण गाथा सुनाता है, "भूख के

मारे मेरी दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर-चूर करके फाँकती हैं।"[15] पेट भरने के लिए ही मुट्ठी भर दाने का लोभ दिखाकर मालिक ने उसका दो कट्ठा खेत हड़प कर लिया था। "दुखमोचन" के टमका-कोइली गाँव की आर्थिक स्थिति भी ठीक-ठाक नहीं है। अधिकांश खेत-मजदूर रोजी-रोटी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोड़कर दूर-दूर जाते थे।

देहातों में निम्नवर्ग के लोगों में आर्थिक दुरावस्था के कारण अशिक्षा तथा अज्ञान की मात्रा अधिक थी। नई विकास योजनओं के कारण स्कूल खूले थे लेकिन उसमें बड़ी जातवालों के लड़के ही अधिक संख्या में पढ़ रहे थे। उनका निम्न जाति की दुर्दशा की ओर ध्यान नहीं था। मतलब उनकी शिक्षा-दीक्षा से गरीब किसी प्रकारसे लाभान्वित नहीं हो सकते थे। साथ ही उपेक्षित वर्गों के दिल में शिक्षा सुविधा के प्रति पिछड़ा हुआ दृष्टिकोण दिखाई देता है। बाबूजी और चाचाजी मन ही मन क्या सोचते होंगे इसकी कल्पना कामेश्वर करता है - "स्कूल-कालेज में पढ़ाओं तो हमेशा के लिए हाथ से निकल जाते हैं। माया नहीं, मोह नहीं, रत्ती भर ममता नहीं। ---- मर जाओ तो मुंह में आग देने के लिए पटना, रांची तार ठोको। दो-दो दिन तक लाश पड़ी रहे और मक्खियों का भोज हो---।"[16] शिक्षा की ओर देखने की इस दकियानूसी नजर के कारण निम्नवर्गीय लोग अशिक्षित रहते है, और उसका फायदा सूदखोर महाजन तथा जमीदार उठाकर उन्हें पग-पर ठगाते है। बलचनमा की माँ को मझले मालिक ने सादे कागद पर अँगूठे का निशाना लेकर बारह रुपये का कर्ज दिया था। जिन्दगी भर सूद देते रहे और मूल ज्यों का त्यों बाकी रह गया। यह अनपढ़ लोग भगवान पर तुरन्त और पक्का विश्वास रखते है। मझले मालिक ने भगवान का भरोसा दिखाकर ही अपने कलम बाग को चौकोर करने के लिए बलचनमा की माँ से दो कट्ठा जमीन हथिया कर ली। अनपढ़ता तथा लाचारी की वजह से बलचनमा की माँ मालिकों को भगवान का अवतार समझती थी।

निष्कर्ष में हम कहना चाहते है कि भारतीय किसान मजदूर अशिक्षित होने से परिवार नियोजन कर अपने संतानों की संख्या नियंत्रित रखने का पक्षपाती शायद आज भी नहीं है। वह खेती में आधुनिक प्रयोग तथा पध्दति नहीं स्वीकृत करता, अतः उपज कम होने से आर्थिक कमी का शिकार होता है। कृषि-सुधार के लिए उसके पास ज्ञान एवं रुचि का अभाव है। बहुत-सी शासकीय सुविधा और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ होते हुए भी आर्थिक उपलब्धता के अभाव से भौतिक सुविधाओं से वंचित निम्न कोटि का जीवन जीने के लिए विवश होता है। अशिक्षा के कारण ही किसान-मजदूरों की अवस्था करुणाजनक होती है।

3. धार्मिक शोषण :

पंडित-पुजारी, मुल्ला-मौलवी, साधु-सन्यासी आदि निम्नवर्गीय अनपढ़ लोगों को पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क का भय और मोह दिखाकर अपने स्वार्थ के लिए ठगाते है, शोषण करते है।

फलतः हमारे देश का किसान-मजदूर भाग्यवादी बनकर अपनी दुर्दशा का कारण जमींदार-महाजन तथा साम्राज्यवादी शोषण नीति न मानकर अपने पूर्व जन्म का संचित, कर्म तथा भाग्य समझता है, और बरबाद होता रहता है। उसका विश्वास है छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। "विधना के विधान को भला हम-तुम टाल सकते हैं?"[17] धर्म केवल अमीरों तथा उच्चवर्गीय लोगों बपौती तथा विरासत है, गरीबों के लिए वह केवल अभिशाप तथा दैन्यावस्था का कारण है। धर्म की आड़ लेकर धनी लोग अपनी यश-कीर्ति फैलाकर अपना आस्तित्व बनाये रखते है। लेकिन निर्धन, रुढ़िग्रस्त किसान-मजदूर वर्ग धर्म के निष्ठुर बंधनों में पिसकर छटपटाता हुआ अन्याय और अत्याचार सहन करने के लिए मजबूर होता है। धर्म अमीर लोगों को नही तो गरीबों को ही दबाता है - "शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आए। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा।"[18] धार्मिक विश्वास तथा विचार पांखण्डियों के हाथ में पड़ने से उन्होंने धर्मरुपी शस्त्र के द्वारा निम्नवर्गीयों का आर्थिक शोषण ही किया है। यह धर्म मार्तण्ड ईश्वर और धर्म के नाम पर सदियों से किसानों का शोषण करते आए हैं।

नागार्जुन ने अपने उपन्यास "रतिनाथ की चाची" में धर्म का विकृत स्वरुप विशद करते हुए धर्म को समाज में आर्थिक विषमता पैदा करनेवाले एक अस्त्र के रुपमें ही चित्रित किया है। "बाबा बटेसरनाथ" में भी निम्नवर्ग के धार्मिक शोषण का जीवन्त रुप साकार किया है। किसी के घर कोई शुभकार्य होता तो पाठक के द्वारा बाबा का पूजन करना पड़ता। मनोरथ पूरा होने पर लोगों को मनौतियाँ चढ़ानी पडती। पंडित लोग अपने घर की धार्मिक विधियों में गरीब-मजदूरों से रात्रन्-दिन काम कर लेते। जैकिसुन के पिता जानू राउत राजा साहब की माँ के श्राध्द में दो महीने खपते रहे। अंधश्रध्दालु किसानों के दिल में वृक्षों पर भूत-पिशाच, देव तथा ब्रह्म रहता है यह विश्वास निर्माण कर पुजा-अर्चा में दान-दक्षिणा उठाते रहते है। किसानों को छोटी-मोटी बातोंपर प्रायश्चित कराने के लिए मजबूर कर अपना स्वार्थ हासिल करने में पंडित लोग होशियार होते हैं। छकौडी की गाय साँप के काटने से मर गयी तो उसे प्रायश्चित करने को मजबूर किया। "पण्डित बबुअन झा ने पचास रुपये लिए तब जाकर पतिया लिखा था। सिमरिया घाट जाना पड़ा ---- दान-दच्छिना करनी पड़ी। घर लौटकर सतनारायण भगवान की कथा सुनी।"[19] घर में लगी आग में झुलसकर मास्टर टेकनाथ का बैल मरता है। बैल की हत्या के पाप से मुक्ति के लिए पंडित उसे चारों चरन का प्रायश्चित बताते है। इस से बचाने के लिए दुखमोचन कहता है - "पंडितों के पुराने पचड़े में नही पड़ना मास्टर, वे तो पतिया-प्रायश्चित के खर्चीले खटरागों में फँसाकर तुम्हारी बधिया ही बिठा देंगे।"[20] किसान-मज़दूरों के सामाजिक-आर्थिक सुधार तथा विकास के लिए दुखमोचन जैसे निरपेक्ष समाज सेवक की आज भी जरुरत है।

अंधश्रध्दा ही धार्मिक शोषण की जड़ है। सुखिया पर भूत चढ़ना तथा दामो ठाकुर का उसे उतारना शोषण का ही प्रमाण है। "जमनिया का बाबा" उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि मठों तथा मंदिरों में धर्म के नामपर खुले आम सामान्य जनता की लूट तथा शोषण होता है। मस्तराम और बाबा जैसे लोग धर्म की आड़ लेकर लोगों को लुटते है। धार्मिक शोषण से तंग आकर ही मुंगेर जिलें के हरिजन ईसाई होने के लिए तैयार होते है। मस्तराम भंगी को कहता है - "अगर ऊँची जात वालों की विष्टा से छुटकारा चाहता है तो महाप्रभु ईसा-मसीह की छत्र छाया में चला जा। --- फौरन तेरी तकदीर ऊँची उठ जायेगी, ---- तेरें बाल-बच्चे कान्वेन्ट में मुक्त शिक्षा पाने लगेंगे----- क्या क्या बनेंगे तेरे बाल् बच्चे।"[21] जमानिया का मठ धार्मिक पाखण्ड का अड्डा ही है। लक्ष्मी के छः महीने के बच्चे को महाष्टमी के रात देवी की प्रतिमा के सामने बकरी के बच्चे की तरह बलि दिया था।

निष्कर्ष यह है कि धर्म के ठेकेदार भोली-भाली भाग्यवादी तथा परंपराप्रिय देहाती जनता को धर्म की आड़ में ईश्वर की दुहाई देकर आसानीसे ठगाते है। धार्मिक रीति-रिवाज तथा विधि-विधान के सहारे उनका आर्थिक शोषण करते है। अनपढ़ लोगों की अन्धश्रध्दा और धार्मिक विश्वास ही उनकी बदहवासी का कारण है। नागार्जुन चाहते है कि अब आधुनिक समाज में धार्मिक शोषण खत्म होना चाहिए। कारण धर्म के नामपर "मनुष्यों की बलि चाहने वाले यक्ष-गंधर्व, देव-देवियाँ और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गए-मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथों की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजरबन्द हैं।"[22] निम्नवर्ग की आर्थिक दुर्दशा के लिए धर्म प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप में कारण बना दिखाई देता है।

4. जमींदार वर्ग द्वारा शोषण :

नागार्जुन के उपन्यासों में सन् 1930 से लेकर सन् 1965 तक का इतिहास चित्रित है। स्वतंत्रता के पूर्व जमींदारो, अंग्रेज ठेकेदारों द्वारा निम्नवर्ग के शोषण का विस्तृत ब्यौरा उनके उपन्यासों का एक प्रतिपाद्य ही है। गरीब लोग फटेहाल घुमते थे, अधभुखे रहते थे, जमीदार बढ़िया खाना और अच्छा वस्त्र पहनते थे। स्वतंत्रता के बाद भी इन परिस्थितियों में अपेक्षित बदल नहीं हो सका है। नागार्जुन की दूर-दृष्टि यह है कि उनके बलचनमा को यह शंका पहले ही आती है - " स्वराज्य मिलने पर बाबू-भैया लोग आपस में ही दही-मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं आगे भी तर माल वही उड़ावेंगे।"[23] नागार्जुन ने निम्नवर्गीय समाज को अभावों और यातनाओं से जूझते देखा है, स्वयं भी इसके सहभागी रहे है। उन्होंने पाया कि निम्न वर्ग जमींदारो के शोषण की चक्की में पिस रहा है, गरीब-पीड़ित मजदूरों से बेगार ली जा रही है। नागार्जुन का बलचनमा इस वर्ग का

प्रतिनिधि है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में उपेक्षित वर्ग के प्रति व्यापक सहानुभूति जताकर उनके स्वावलम्बन का आशावाद प्रस्तुत किया है। स्वयं उनका कथन है कि - "---- असली भारत गाँव में है जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है। ये विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्थासे नियन्त्रित हैं। मैने उन को प्रकट करने का यत्न किया है।"[24] यह वर्ग हीन-दीन और निराश्रित है।

जमीदारी प्रथाने एक लम्बे इतिहास तक किसान और मजदूरों का शोषण किया है अपितु उनका जीवन ही जागीरदारों के आधिन था। जमींदार के साथ पूँजीपति वर्ग, नौकरशाह और सरकारी मंत्रीगण आदि मिलकर निम्नवर्ग का आर्थिक शोषण अबाधित रुप से करते आए हैं। बिहार के किसान आन्दोलन के समय 1937 में कांग्रेसी मंत्रियोंने जमीदारों को ही सहयोग दिया था। जमींदारी प्रथा को उठाने में जमींदारों का विरोध होते देखकर "मन्त्रियोंने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया भर में बदनामी फैल गई कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम-खुल्ला यह बात कही।"[25]

नागार्जुन का "वरुण के बेटे" उपन्यास मछुआ जाति और जमींदार के वर्ग संघर्ष की कथा है। देपुरा के मैथिल जमींदार इनकी बस्ती और उदर निर्वाह के साधन गढ़-पोखर जमींदारी उन्मूलन कानून से बचने के लिए सतघरा के जमींदार को बेचते है। तब मलाही-गोंढ़ियारी के मछुए असहाय होकर अपनी रोजी-रोटी के लिए सजग होते है। शोषण और अन्याय के कुचक्र में जमींदारों को नेता लोग और अधिकारी भी सहयोग देते है - "नया खरीददार सतघरा के जमींदार थे।---- उनमें से एक शासक-दल का पुराना और प्रतिष्ठित नेता भी था। पटना, दिल्ली और जिला-केंन्द्र लहेरियासराय के बड़े अधिकारियों से उनकी मिलीभगत थी।"[26] छोटे लोगों के उदर-निर्वाह के साधन बेचकर जमींदार वर्ग लाभान्वित हो रहा था।

"बलचनमा" उपन्यास का प्रारंभ ही जमीदारों के अत्याचार और शोषण से होता है। और अन्त भी जमींदार फूलबाबू के गुंडों के द्वारा बलचनमा की बेरहम पिटाई से बेहोशी में हो जाता है। बलचनमा के पिता को एक कच्चा आम तोड़कर खाने के कसूर में अपनी जान गँवानी पड़ी। उस कठोर जमीदार के यहाँ बलचनमा को भैंस चराने का काम करना पड़ता है। मँझले मालिक ने बलचनमा की माँ के अँगूठे का निशान सादे कागद पर लेकर बारह रुपये कर्ज दिया था। बलचनमा का कथन है - "सूद देते-देते हम थक गये, मगर मूर ज्यों का त्यों खड़ा था। छोटी मलिकाइन दुअन्नी के हिसाब से साल-भरका दरमहा डेढ़ रुपैया देती थीं, उतने से क्या होता---।"[27] गाँव के पश्चिम की ओर नब्बे बीघे की उपजाऊ जमींन थी। यह "जमीन तीस-एक मुसलमानों, ग्वालों और केवट लोगों के अधिकार में सैंकड़ो साल से थी मगर चालाकी से मालिक के परदादा ने इसे अपने नाम चढ़ा दिया।"[28]

इस प्रकार बेरहमी, अन्याय, झूठापन और चालबाजो से जमींदार किसान-मज़दूरों का शोषण करते थे।

"बलचनमा" उपन्यास का नायक बलचनमा का जीवन तो जमीदारो के शोषण और अन्याय-अत्याचार की जीवन्त गाथा है। बलचनमा की मलिकाइन भी विधवा ब्रह्मणी और करीमबख्श को अनाज देते समय छोटे और लेते समय बड़े बटखरे से धान तोलकर आपत्तिग्रस्त लोगों को ठगाती है। कालानुरुप जमींदारों के शोषण का स्वरुप बदला है, खत्म नहीं हुआ है। बलचनमा के परदादा के समय मनुष्यों को दास बनाकर दहेज में देने की पध्दति थी। बलचनमा का कथन - "मेरे परदादा के परदादा को वहीं के एक जमीदार ने दहेज में दामाद के साथ कर दिया था। तब से लेकर यह सातवाँ पुरखा चल रहा है।"[29] दुनिया बदली, जमाना बदला लेकिन जमींदारो का शोषण विभिन्न रुपों में कायम ही रहा है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में जयदेव नामक पूँजीपति शोषण के विविध तरीके अपनाता है। वह इतना कुकर्मी है - "तरुणी विधवाओं को प्रेम-पाश में फँसाकर फिर उनकी जायदाद अपने नाम लिखवा लेना ----। दो खेत वालों में सीमा का झगड़ा खड़ा करके मुकदमों में बझा देना और उनमें से एक को खुद का बनाकर लील जाना, सस्ते दामों में अँगूठे (हैंड़नोट) खरीदकर पीछे ज्यादा-से ज्यादा रकम चढ़ाकर उन्हें अदालत में पेश कर देना----।"[30] इसी तरह जमीदार तथा पूँजीपति के चंगुल से बचकर निकलना ग्रामीण लोगों को मुश्कील ही क्या असंभव ही था।

नागार्जुन ने "बाबा बटेसरनाथ" में वट-वृक्ष के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी जमींदारों द्वारा किसान-मजदूरों के शोषण का ही चित्र साकार किया है। जमीदारों की क्रूरता और भयावहता का रुप बाबा के शब्दों में - "सौं वर्ष पहले दर-अस्ल अपने इन इलाकों में जमींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था। रियाया से वेठ-बेगार लेना उसका सहज अधिकार था ----- वह रोब। वह दबदबा। वह अकड़। वह शान। वह तानाशाही। वह जोर। वह जुल्म। क्या बताऊँ, बेटा? छोटी औकात के और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकौडे समझता ही था, अच्छी-अच्छी हैसियत के भले-खासे व्यक्तियों से वक्त-बेवक्त नाक रगडवाता था जमींदार।"[31] कर्ज की रक्कम समय पर वापस न दे सकने से जमींदार राजा बहादूर रमादत्तसिंह द्वारा शत्रूमर्दन राय पर किये अमानवीय अत्याचार का वर्णन पढ़ते ही दिल दहकने लगता है, शरीर पर रोंगटे खड़े रहते हैं। शत्रूमर्दन राय के हाथ माथेपर बाँधकर लाल चोंटो का घोंसला माथेपर रखा गया।

माथा हिलते ही पीठ पर गुंडोंद्वारा कोड़े बरसाये गये थे। जमींदारी उन्मूलन कानून बनते ही जमींदारों ने व्यक्तिगत लाभ के लिए निम्नवर्ग के रोजी-रोटी के साधन ही बेचकर उन्हें दर-दर की ठोकरे खाने के लिए विवश किया था।

"जमनिया का बाबा" तथा "इमरतिया" उपन्यास में मठों के जरिए साधु और जमींदार हाथ में हाथ मिलाकर दीन-दु:खियोंको लूटते थे, यह शिवनगर की रानी साहिबा के आचरण से स्पष्ट

होता है। मूलतः जमनिया का मठ कोई धार्मिक भक्ति-भावसे युक्त परंपरागत मठ नहीं है। "जमींदारी, ताल्लुकदारी प्रथा के उन्मूलन का कानून पास हुआ तो जमनिया और लखनौली के दो-तीन भू-स्वामियोंने ज्यादा-से ज्यादा जमीन हडपने के लिए रातोंरात "जमनिया मठ" की स्थापना कर ड़ाली।"[32] यह मठ केवल बदमाशों का अड्डा ही था।

जमींदार और जागीरदार किसान-मजदूरों से बेगार लेते रहे हैं। "बेगार-प्रथा सामंती समाज की एक ऐसी घृणित एवं शोषक वृत्ति है जिसके अंतर्गत कृषकों-मजदूरों से बिना उनके श्रम का मूल्य दिये काम लिया जाता है।"[33] नागार्जुन ने "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा" और "बाबा बटेसरनाथ" में बेगार प्रथा का विस्तृत विवेचन किया है। कुल्ली राउत और बलचनमा इस बेगार प्रथा के जीवन्त शिकार हैं। कुल्ली राउत को काम करने के बदले में कुछ नहीं या बहुत थोड़ा दिया जाता था। बलचनमा को भैंस चराने के बदले में दरमहा डेढ़ रुपया मिलता था। फिरभी उस से बच्चों को खिलाना, पानी भरना, झाड़ू लगाना, दुकान से नून-तेल लाना, मालिक-मालिकाइन का अंग-पैर चाँपना आदि काम मुफ्त में करने पड़ते थे। बलचनमा का आत्मकथन है "लेकिन मैं तो सिर्फ चरवाहा ही नहीं था, उनका बहिया भी था। मेरी हड्डी-हड्डी, नस-नस और रोएँ-रोएँ पर उनका मौरूसी हक था। पोसने-पालने, सड़ाने-गलाने और मारने-पीटने का भी उन्हें पूरा हक था।"[34] लेकिन कुल्लीराउत हो या बलचनमा ऐसे अमानवीय अत्याचार करनेवाले निर्दय शोषकों का न तो प्रतिकार कर सकते थे तथा न शिकायत कर सकते थे। बलचनमा के शब्द है - "अदालत उनकी, हकीम उनका, थाना-दारोगा उनका, पुलिस उनकी। गरीबों के लिए सिवाय लात-जूता के और है ही क्या?"[35] खामोश होकर अत्याचार सहने-भोगने के अलावा निम्नवर्ग के सम्मुख कोई दूसरा रास्ता ही नहीं बचा था।

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में जमींदारों द्वारा ली गयी बेगार का वर्णन पाठकों के हृदय में करुणा और विद्रोह पैदा करता है। जमींदारों के यहाँ जब विवाह, तीज-त्यौहार तथा गाने-बजाने के कार्यक्रम होते तब वहाँ बिना मजदूरी लिए किसान-मज़दूर काम करते रहते थे। जमींदार के बेटे की शादी में "कन्धों पर बाँस रखकर सोलह बेगार भारी-सी एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे, उस पर दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज-बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी - तबला-डुग्गी, सारंगी, मजीरा सब साथ दे रहे थे ---- और राजा का बेटा ब्याह करने जा रहा है।"[36] बेगार के द्वारा सर्व सामान्य जनता का शोषण करना जमींदार अपना जन्मसिध्द अधिकार ही मानते थे। अतः वे मजदूरों से सेवा लेने में, उन पर अत्याचार करने में जरा भी कसर नहीं रखते थे।

निष्कर्ष रुप में हम कहते है कि नागार्जुन ने कृषि प्रधान देश भारत के आर्थिक ढाँचे के मूलाधार किसान-मजदूरों की जमींदारों से की गयी शोचनीय आर्थिक दशा का अपने उपन्यासों में सांगोपांग विराट चित्र प्रस्तुत किया है। जमींदारों के कारनामों से पीड़ित भारतीय किसान टूटकर निम्न

जीवन की दुर्दशा भुगतने के लिए विवश हो गया है। उपन्यास में जगह-जगह जमींदारो की क्रूरता और बेगार पध्दति की अमानुषता दिखाई देती है। स्पष्ट है कि किसान-मजदूरों की अवर्णणीय गरीबी एवं लाचारी के लिए जमींदार वर्ग ही जिम्मेदार है। पीढ़ियों से निम्नवर्गका शोषण होने से उनकी आर्थिक स्थिति में कोई "राम" नहीं है। इस प्रकारसे निम्नवर्ग के शोषण के विरुध्द तीव्र प्रतिक्रिया नागार्जुन के हृदय में है। कारण उन्होंने निम्नवर्ग का केवल बौध्दिक समर्थन ही नहीं किया है, बल्कि उनके कंधे से कंधा लगाकर उनके आन्दोलनों का नेतृत्व किया है, सदा साथी रहे है।

5. **महाजन वर्ग द्वारा शोषण :**

स्वातंत्र्यपूर्व काल में अंग्रेज राजा थे और उनके प्रतिनिधि जमींदार किसानों के अन्नदाता-सर्वेसर्वा बने। खेतों में पैदा किया हुआ अन्न जमींदार को देकर अधपेट रहकर जीनेवाला किसान यह जनता थी। इस जनता का रुपयों के लिए तिल-तिलकर रक्त चूसनेवाली एक अन्य शोषक शक्तिका उदय हुआ, वह है महाजनी शक्ति। नागार्जुन के उपन्यासों में महाजनों के करतुतों का हृदय-विदारक रुप साकार हुआ है।

जमींदार उन्मूलन प्रथा के कारण बेचैन हुए जमींदारोंने अपनी जमींने, सार्वजनिन उपयोग की जगहे, देवी-देवताओंकी जायदाद, चरागाह, नदियोंके पाट आदि बेचकर उद्योग-व्यवसाय में पूँजी लगायी। और उद्योगों के विकास के साथ ही महाजनी सभ्यता का विकास हुआ। पुराने जमींदार ही महाजन का नया मुखौटा परिधानकर तो कहीं-कहीं जमींदार ही महाजन की दुहरी भूमिका निभाकर सामान्य जन का शोषण कर रहे है। तात्पर्य कि पूँजीवादी और महाजनी सभ्यता के कारण किसानों एवं मजदूरों का व्यापक रुपसे शोषण होने लगा। यह महाजन कसाई या राक्षस के समान होने से उन्हें किसान-मजदूरों की दुर्दशा पर जरा भी रहम नहीं आती थी। बलचनमा कहता है - "मझले मालिक सौ कसाई के एक कसाई थे। बाबू के मरने पर बारह रुपये उन्होंने माँ को कर्जमें दिए थे। बदले में सादे कागज पर अंगूठेका निशान ले लिया था। सूद देते-देते हम थक गये, मूर ज्यों-का-त्यों खड़ा था।"[37] किसान वर्ग कर्ज तथा महाजन के जाल में ऐसा जकड़ जाता था कि मरने के बाद भी ऋण से मुक्त नहीं हो सकता था। ऋण सूद के कारण इतना बढ़ता था कि आनेवाली हर पीढ़ी को महाजन की गुलामी करनी पड़ती थी। आतंक, अज्ञान तथा अंधविश्वास के कारण लोग विरोध तथा प्रतिकार का विचार सपने में भी नही देख सकते थे। महाजनी शोषणचक्र से किसान-मजदूरों के नारकीय जीवन को बलचनमा जानता है - "गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छींटकर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है उसी तरह ये दौलतवाले लोग गरजमंद औरतों को फँसा मारते है।"[38]

"रतिनाथ की चाची" उपन्यास में शुभंकरपुर के मालिक रायबहादुर दुर्गानन्दनसिंह जमींदार भी थे और किसानों से लेन-देन का कारोबार भी करते थे। तीन लाख रुपये इस इलाखें में सूद

पर दिये थे। ब्याज की दर हर महीना डेढ़ रुपया सैकड़ा थी। "राजाबहादुर पुराने अँगूठे को साल-साल नया करवाते जाते। सूद भी मूल बनता जाता। चक्रवृध्दि का यह क्रम राजाबहादूर की शरीर वृध्दि के लिए रसायन का काम कर रहा था। कहते हैं, हवेली में नकद रुपये रखने के लिए उन्हें चहबच्चा बनाना पड़ा था।"[39] महाजन अपनी दौलत से निम्नवर्गीयोंका खून-पसीना माती के मोल से खरीदकर उनका जीवन आसानीसे बरबाद करते थे।

नागार्जुन ने "बाबा अंब्सरनाथ" उपन्यास में महाजनी शोषण का हृदयद्रावक चित्र अंकित किया है। स्वाभिमानी किसान शत्रूमर्दन राय के पिताजी ने राजाबहादुर रमादत्तसिंह से तीस रुपये सूद पर लिए थे। बाप का कर्ज चूका नहीं सके थे कारण रक्कम सूद से मोटी हो गयी थी। उन्होंने रुपये के बदले में उतनी जमीन कब्जे में लेने की या दो महीने की मुहलत देने की बिनती की। लेकिन उसकी बात नहीं सुनी गयी और उस जो बर्बर दंड दिया उसका सार है कि - "शत्रुमर्दनराय अपना बदन लाला चींटो से बिंधवाता रहा। छ्ट-पटाता रहा और दाँतों-पर-दाँत बैठाकर चुभन व जलन पचाता रहा। हिलता-डुलता रहा और कोड़े खाता रहा ..... आखिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।"[40]

"कुंभीपाक" उपन्यास में औरतों का विक्रय करनेवाले तिलकधारीदास हमारी दृष्टि से आधुनिक महाजन ही है। रुपये के लिए घिनौंने से घिनौना काम करने कोतत्परवे पैसों को ही स्वर्ग मानते है। सामन्ती व्यवस्था की यह देन अब भी समाप्त नहीं हुई है। रुपया हासिल करना ही जिनके जीवनका मूल हेतु है वे जमीदार बलचनमा की दृष्टि से कसाई है - "न लड़के का मोह न लड़की का, न भाई का न बहन का, न बाप का मोह न माय का। हाय रुपैया, हाय रुपैया। जब देखों तब रुपैया। ----- मुसीबत के मारे खेत-मजदूर, आज कल भी पेट बेचते फिरते हैं।"[41] विविध युक्ति-प्रयुक्तियों से रुपयों के लिए लोगों का जीना हराम करना ही इनके जीवन का मकसद होता है। गरीब लोग ईमानदार होते हुए भी बेईमान ठहराए जाते है और जमींदार तथा पूँजीपति रुपयों के लिए झूठ बोलकर अपने बडप्पन की शेखी बघारते रहते है। उच्च वर्ग के लोग नैतिक दृष्टि से भी गये-बिते चरित्रहिन ही होते है। बलचनमा का अनुभव है - "छोटे जमीदार तो और भी कसाई होते हैं, एक तो करैला फिर नीम पर चढ़ा हुआ।"[42] महाजन तथा जमीदारों के आचरण और वृत्ति-कृति का वास्तव वर्णन नागार्जुन ने किया है।

निष्कर्ष यह है कि महाजन वर्ग सारे विधि-निषेध को ठुकराकर बेशर्मी से किसान-मजदूर का आर्थिक शोषण करता आया है। अनपढ़ और पिछड़ा हुआ निम्नवर्ग उनकी चालबाजी का शिकार बनकर छटपटाता रहा है। सामन्त कालीन निम्नवर्ग की यह दुर्दशा वर्तमान में खत्म हो गयी है यह कहने का साहस हम नहीं करते। हाँ, सामन्तों - जमींदारों तथा महाजनों ने नामान्तर कर नए मुखौटे धारण किए हैं। उपेक्षित वर्गोंपर अत्याचार और उनका आर्थिक शोषण आज भी कुशलतापूर्वक

जारी है। उपन्यासकार नागार्जुन ने स्पष्ट किया है कि शोषकों के यहाँ सुवर्ण-सम्पति के ढ़ेर है तो शोषित निम्नवर्ग कुडे-करकट के समान अस्तित्वहिन बनकर अपने भाग्य को कोसता आया है। उसमें चेतना और जागरण का भाव नागार्जुन ने बलचनमा, जैकिसुन, जीवनाथ और दुखमोचन के रुप में देखा है।

6. **साम्राज्यवादी शोषण :**

नागार्जुन जिस काल में साहित्य जगत में अवतरित हुए वह काल इतिहास के अनुसार भारतीय जनता के जागृति का काल था। देश को आजाद करने के लिए हुए विभिन्न प्रयासों की प्रतिक्रिया इस भावुक कलाकार के दिल पर पड़ी। अंग्रेजों की शोषण नीति से भारतीय कृषि व्यवस्था का प्रमुख अंग लघु-कुटीर उद्योग - धन्दे तबाह हो गये थे और सामान्य जनतापर करों का भारी बोझ लादा गया था। अंग्रेजों की शोषण नीति का सर्वाधिक शिकार भारतीय किसान हुआ। किसानों की दुर्दशा देखकर पीड़ित वर्ग का यह प्रतिनिधि कलाकार अपने आपको अलिप्त कैसे रख सकता था, अतः नागार्जुन ने बिहार के किसान आन्दोलन का नेतृत्व संभाला और प्रसंगवश जेल भी गए। राज्यों में कॉंग्रेस मंत्रिमण्डल निर्माण हो गये थे, किन्तु यह मंत्रिगण जमींदारों की शोषण वृति का ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप में समर्थन कर रहे थे। भारतकी अर्थ व्यवस्था का आधार खेती और किसान की अवस्था शोचनीय हो गयी थी। इन सब का प्रभाव नागार्जुन के हृदयपर पड़ा। अतः उनके उपन्यास "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ" आदि में उन्होंने तत्कालीन, राजनीतिक परिस्थितियाँ और कॉंग्रेसियोंका उच्च वर्गीय लोगोंका पक्ष लेने की दुहरी राजनीति का विस्तृत विवेचन किया है।

ब्रिटिश नीतियोंके कारण ही जमीदार, महाजन तथा नया व्यापारी वर्ग निर्माण होकर वे किसानों का शोषण करने लगे थे। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास के बाबा ने अपनी आँखों से इन वर्गों की उत्पत्ति और करतूतें देखी हैं। ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय लोगों को "काले" कहकर निम्न दर्जा दिया जाता था। प्रशासनिक अधिकारी गोरे ही रहते थे। महारानी विक्टोरिया के काल में "जिले का कलक्टर गोरा था, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट गोरा था। सब-डिवीजनल अफसर गोरे थे। अदालत का बड़ा हाकिम गोरा था। ऊपर बड़ा लाट और छोटा लाट सब गोरे साहब।"[43] अतः शोषण का अधिकार गोरे अंग्रेजों के हाथ में था। नागार्जुन महारानी विक्टोरिया को "राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया", "बनियों की रानी" कहकर साम्राज्यवादी शक्तियों से अपनी नफ़रत व्यक्त करते है। अंग्रजोंने हिन्दुस्थानमें जो रेल चलाई, उसमें जनता के हित की भावना न होकर व्यापारियों के कल्याण का छुपा लक्ष्य था। रेल लाईन बिछाने का काम करनेवाले मजदूरों के "मजदूरी के रेट थे : दो पैसे, एक आना और हद-से हद दो आना ---।"[44] स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियां भारत की जनता के हित की नहीं थी। रेल भी भारतीय लोगों के शोषण का हथियार के रुपमें प्रयुक्त होती रहीं।

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने लूट और शोषण के कई रास्ते निकाल लिये थे। उसमें सामन्त-जमींदारों और सरकारी अफसरों की भी मदद मिलती थी। बाबा कहता है - "प्रति बीघा तीन कट्टा जमीन में नील की खेती करने के लिए किसान मजबूर किए जाते थे। यह दबाव जमींदारों और सरकारी अफसरों द्वारा डलवाया जाता था। जो नहीं मानता, उसे कई तरह से परेशान करते थे।"[45] ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के अत्याचार और दमन से भारत की गरीब जनतापर सर्वत्र आतंक छाया हुआ था।

अंग्रेज सामूहिकता के साथ ही वैयक्तिक स्तर पर भी भारतीयों से बर्बरता का आचरण करते थे, शोषण करते थे। जैकिसुन के दादा को जौन साहब के साले ने इसलिए पीट दिया था कि वह सलाम करने से चूक गया था। "---- अगले ही रोज साहब के सामने अधिकभाई की पीठ पर हंटरों की बौछार पड़ी---- ता- जिन्दगी तेरे दादा की पीठ पर हंटर के वे निशान बने रहे।"[46] सर्वत्र गोरों का आतंक कायम था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने में तो अंग्रेजों का देहातों में भी दबदबा था, "उनका आतंक 1920 तक बना रहा। लगभग सौ वर्ष उन्होंने गंवई जनता को खूब कसकर दूहा। --- विरोध में जो भी कोई आवाज उठता वह बागी करार दिया जाता।"[47]

ब्रिटिशों की शोषण और अत्याचारी नीति की पूर्वपीठिकापर कॉंग्रेस मंत्रिगणों की वृत्ति भी किसान-मजदूरों के प्रति उदार नहीं रही। सन् 1937 में जब कई राज्योंमें कॉंग्रेसी मंत्रिमण्डल बने तो वे भी सामन्त-जमींदारों का ही हित देखने लगेथे। "मन्त्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारो की ओर। दुनियाभर में बदनामी फैल गई कि बिहार की कॉंग्रेस पर जमींदारोंका असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम-खुल्ला यह बात कहीं।"[48] स्वराज्य मिलने पर आम जनता का नही लेकिन पूँजीपति, सामन्त, जमींदारों, सेठ-साहूकारों का ही भाग्य चमक गया। गरीब, गरीब ही रहा मगर अमीर और अमीर होता गया। कांगेस की नीति के बारे में बलचनमा कडवी सच्चाई बताता है - "स्वराज्य मिलने पर बाबू-भैया लोग आपस में ही दही-मछली बाँटे लेंगे, जो लोग आज मालिक बन बैठे हैं आगे भी तर माल वही उड़ावेंगे। हम लोगों के हिस्से सीठी-ही-साठी पड़ेगी।"[49] नागार्जुन के इस दूरदर्शी विचारों की सच्चाई का अनुभव आजादी के बाद आ रहा है। भारतीय लोगों को राजनैतिक आजादी मिली है, आर्थिक आजादी अभी तक नहीं मिली। आजादी के पहले जन-सामान्य ने जो सपने देखे थे, इच्छा-अभिललाषाएँ की थी वह सब तुकड़े-तुकड़े होकर बिखर गयी है। सर्वथा जातियवाद-प्रान्तीयवाद, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार का ही बोलबाला हो गया है।

नागार्जुन की सहानुभूति शोषित-पीड़ित वर्ग के साथ होने से उनके उपन्यासों में शोषक वर्ग की राजनीति, नेताओंका चारित्रिक पतन और भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश मिलता है। "कुम्भीपाक"

उपन्यास में सम्पादक दिवाकर रिक्शेवाले को कम पैसे देकर मिनिस्टर की कोठी में घुसते है। इस पर रिक्शावाला कहता है कि, "यह तो भारी जुलुम है न? कम से कम मिनिस्टर के यहां तो बेइन्साफी नहीं चलनी चाहिए।" तब का चपरासी का उत्तर आजकी राजनीति का पर्दाफाश करता है - "अरे, इन्हीं कोठियों के अन्दर तो अन्याय पनाह लेता है आकर। सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में कैद है, उसे तुम तक पहुंचने में दस-बीस वर्ष लग जाएंगे अभी।"[50] विडम्बना यह है कि भारत के राजकीय नेता जनता के प्रतिनिधि होकर भी जनता से कट गये है, वे दूसरे सामन्त बन गये है। यह नेता लोग चुनाव जीतने के लिए नोट देकर वोट प्राप्त करना या जमनिया के मठ जैसे राष्ट्रविरोधी तत्वों से भी अपवित्र गठ बन्धन करने में नहीं चूकते। आजादी की सुख-सुविधाएँ राजनैतिक नेताओं, उच्च वर्ग, महाजन तथा सरकारी अधिकारियोंके लिए ही उपलब्ध हो गयी है। अतः नागार्जुन वर्तमान सरकार से असन्तुष्ट है, उसे बदलना चाहते है। कारण आज की राजनीति में किसान-मजदूरों का शोषण होकर प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण अन्याय, भ्रष्टचार और जातियवाद को ही बढ़ावा मिल रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पूँजीपतियोंने और महाजनोंने साम्राज्यवाद के साथ आर्थिक समझौता ही किया है। राजनीति तथा साम्राज्य जमींदार-सामन्त वर्ग के हाथ का खिलौना बन गया है। शासन के द्वारा निम्न वर्ग का हित होने के बजाय उल्टे उनका शोषण ही हो गया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद हो या स्वतंत्र भारत की जनतांत्रिक सरकार हो, उनकी राजनीतिक विचारधारा का केन्द्रबिंदु निम्नवर्ग कभी नहीं हुआ है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में साम्राज्यवाद के कारण निम्नवर्ग की जो शोचनीय दशा हो गयी थी उसका विशद, विराट चित्र खींचा है। और वर्तमान शासन-व्यवस्था के प्रति अनास्था एवं समाजवादी आर्थिक विचारधारा के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है। और "मार्क्सवादी विचारणाओं से परिचालित होने के फलस्वरुप नागार्जुन आधुनिक समाज-व्यवस्था का चित्रण आर्थिक पीठिका में करते हैं।"[51]

निम्नवर्ग : आर्थिक दशा एवं दुर्दशा :

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग सदियों से अभाव और सदा "नहीं रे।" स्थिति से झगड़ता रहा है। प्राकृतिक प्रकोपों और उच्चवर्ग के अन्याय तथा शोषण के बीच पलता यह निम्नवर्ग अनेक आर्थिक समस्याओं से घिरा है। अर्थाभाव के कारणही उसकी शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक दशा करुणाजनक हो गयी है। उपर्युक्त विवेचित अनेक प्रकार के शोषण से उसे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी असंभव हो गया है। अतः वह जानवरों की अपेक्षा गया-बीता जीवन जीने के लिए मजबूर हुआ है। हम यहाँ संक्षेप में आर्थिक अभाव से निम्नवर्ग के जीवन की हो गयी दशा एवं दुर्दशा को देखना उचित समझते हैं।

भोजन :

रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्यकी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। इनके बगैर वह ठीक से जिंदगी बसर नहीं कर सकता। इनमें भी रोटी तो परमावश्यक है। आर्थिक विषमता के कारण एक जगह पर रोटी की अती हैं, तो दूसरी जगह पर भूख से पेट में दर्द है। प्राय: पूँजीवादी समाज रचना के कारण यह स्थिति निर्माण हुई है। साथ ही अकाल, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपत्तियों के कारण लोगों को अच्छा और पेटभर खाना कठिन हो जाता है।

"बलचनमा" उपन्यास के बलचनमा की माँ और दादी आम की गुठलियोंका गुदा मसल-मसल कर खाती है। बलचनमा को भी उसकी मलिकाइन मडुआ की सुखी रोटी, सड़ा आम, फटे दूध का बदबूदार छेना या जूठन की बची हुई कडवी तरकारी तो कभी खट्टा-सड़ा बासा दही देकर बहुत उपकार जताने के भाव से कहती थी, "बलचनमा, ऐसी अच्छी चीज तेरे बाप-दादे ने भी नहीं खाई होगी।"[52] मालिक लोग यही चाहते थे कि नौकरों ने सदा जूठा-सड़ा और बासा खाना ही चाहिए - "नौकर-चाकर, टहलू और खवास को दही खाने का हक नहीं है।"[53] खाने-पिने की यह अवस्था निश्चित रुप से निम्नवर्ग की आर्थिक हैसियत का संकेत करती है। बलचनमा का दुर्भाग्य है कि वह बचपन से मालिक लोगों की जूठन खाकर ही पला-पोसा है, अच्छी चीज उसे जूठन में ही खाने को मिली है।

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में नागार्जुन ने स्पष्ट किया है कि अकाल के दिनों में किसान-मजदूर भूक्कड़ ही बनते रहते है। घर में अनाज न होने से लाचार होकर मछलियाँ तथा कछुएँ खाने पड़े है। "तालाबों में पानी घटने लगा तो लोग मछालियों और कछुओंपर टूट पड़े। मछालियाँ भूनकर बिना नमक के ही उन्हें वे पेट के हवाले कर देते।"[54] किसानों को शकरकंद, ईंटोंका चूरा तो मजदूरों को जंगली साग-सब्जी, घास-जड़ और पेडों की पत्तियाँ खाने की मुसीबत आती है। "वरुण के बेटे" उपन्यास में खुरखुन के बच्चे मछली सेंक-सेंककर ही खाते है। सब्जी बनाने के लिए तेल तक घरमें नहीं है। स्वयं खुरखुन भी खाने-पिने के बारे में लालची बन गया है कि पचमेर मिठाई खाने के बाद भी दो-दो सकोरा चाय पिता है। यह लालच परिस्थितियों की प्रतिकूलता से ही आया है। यदि इन लोगोंकी आर्थिक औकात ठीक-ठाक होती तो ऐसा खाना नही खाते।

कपडे :

भारतीय ग्रामीण जनता की निर्धनता का परिचायक उसका भोजन एवं वस्त्रों का अभाव है। भोजन की दुर्दशा के अतिरिक्त ग्रामीण जनता के वस्त्रों के निम्न-स्तर एवं उसकी नग्नता के चित्र भी

नागार्जुन के उपन्यासों में मिलते है। "वरुण के बेटे" उपन्यास के खुरखुन के बच्चे नंग-धंडग ही है। उसके घर में खजुर के पत्तों से बिनी ममूली दो चटाइयाँ है। उनकी पत्नी चिथड़ा पहनकर ही अस्पताल जाने के लिए तैयार है। "पुआल बिछे थे कोने में, उन पर फटी-पुरानी बोरी बिछी थी। एक जवान लड़की और नंग-धडंग बच्चे बेतरतीब सोए पड़े थे। ओढ़ना के नाम पर कथरी-गुदड़ी के दो-तीन छोटे-बड़े टुकड़े उन शरीरों को जहाँ-तहाँ से ढ़क रहे थे।"[55] खुरखुन के परिवार के फटे हाल केसमान "बलचनमा" उपन्यास के बलचनमा के परिवार के पास ओढ़ने-बिछाने के लिए पुरे वस्त्र नहीं है। ठंड से बचने के लिए आग तापने की लकड़ियाँ भी न होने पर बकरी की सुखी मींगणियाँ जलाकर रात काटते है। बचपन में बलचनमा को मैलीसी बिस्ठी पहनने को मिली थी। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में चित्रित रुपउली गाँव के जो छोकरे-छोकरियाँ जानवर लेकर जंगल में आते थे उनके कपड़े का वर्णन बाबा करते है - "मैला-चीकट, दसियों पैबन्द लगा घुटनों तक का कपड़ा इन छोकरियों का पहनावा हुआ करता।"[56] प्रातिनिधिक रुप में चित्रित यह कपड़े की दशा निम्नवर्ग के लोगों की आर्थिक दशा का परिचय देती है। उनका अर्ध-नग्न रहना देश तथा मानवता का ही नग्न रहना है। शोषकों ने निम्नवर्गीयोंका जीवन रस ही चूसा नहीं है तो उनके कपड़े भी उतार लिए है।

मकान :

निम्नवर्ग के पास या तो मकान होते नहीं, या हो तो भी उन्हें मकान कहने में ड़र लगता है। निम्नवर्गीय लोगों का मनुष्य के रहनेका और जानवर बांधने का स्थान मकान कहलाता है। घर में सोने के लिए भी जगह न होने से प्रायः पुरुष वर्ग रात में रास्तेपर, आँगन में, गाँव के सार्वजनिन मंदिर या इधर-उधर कहीं भी सोने के लिए जाते है। घर पुरानी कोठी या घास-फूस की कोई छपरैल कुटिया होती है। दीवारें टूटी हुई होती हैं, छतें बरसात के दिनों में पानी बरसाती है।

नागार्जुन ने निम्नवर्गीय लोगों के मकान की अवस्था का करुण चित्र "वरुण के बेटे" उपन्यास में खुरखुन और भोला के मकान का खीचा हैं। खुरखुन के घर के एक कोने में चूल्हा-चौका और दूसरे में अनाज रखने के खाली कूंड और कुठले रखे थे। बाँसों से बना छप्पर, जिसके छिक्के लटक रहे थे। दीवारों की खुंटियों से मछलियाँ पकड़ने और फँसाने के औजार टंगे थे बाकी घर खाली था। याने "खुरखुन का समूचा संसार ही मानो तेरह फुट लम्बे और नौ फुट-चौडे घर में अटा, पड़ा था। भीतें बीस साल पुरानी----।[57] वैसे तो मलाही-गोंढ़ियारी गाँव के सब मछुओं के घरों की दशा कम-अधिक रुप में खुरखुन के घर के समान ही थी। मकान याने छान फूंक की कुटीरे होने से आग लगती तो पूरे मकान जलकर खाक हो जाते। बाढ़ का पानी घरों में घुसता और दीवारें धँस जाती थी। "कुम्भीपाक" उपन्यास के मुन्शी मनबोधलाल के मकान में जो किरायेदार याने गरीब तथा उपेक्षित "प्रजा" रहती थी वह अंधेरी कोठरी ही थी। "बलचनमा" उपन्यास का नायक बलचनमा अपने घर का परिचय देता है कि

"नौ हाथ लम्बा सात हाथ चौड़ा घर था। संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि मकान रुपी संपत्ति से भी निम्नवर्ग के लोग वंचित थे। मानव मात्र की मूलभूत आवश्यकता मकान भी उनके भाग्य में नहीं था।

बरतन और गहने :

उच्चवर्ग के पास सम्पति के रुप में जैसे जमीन, मकान, सोना आदि होता है वैसे निम्नवर्ग के पास कुछ भी नहीं होता। जो वर्ग मेहनत-मजदूरी करके, भीख मॉंगकर, जुठे पत्तल चाटकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हो उसके पास बर्तन और गहने कहॉं से आएँगे? समस्त नारी जाति की आभूषण प्रियता के समान इस वर्ग की नारियों के पास भी गहने होते हैं मगर सुवर्ण के नहीं। पकाने-खाने के लिए जितने बर्तन लगते है उतने ही टूटी-फूटी अवस्था में मौजूद रहते हैं। "वरुण के बेटे" उपन्यास के खुरखुन के घर में "पीतल का पिचका लोटा अलमुनियम की लुंज थाली। बाकी बर्तन-बासन मिट्टी के " थे।[58] खुरखुन की बेटी मधुरी के गले में हँसली, बाहों में बाजूबन्द, कलाइयों में मरोड़दार कंगन-पैरों में साटन इतने ही मामूली कीमत के गहने उसके पास थे। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास की चरवाहिनों के शरीरपर मैले-चीकट कपड़े के समान आभूषण भी कॉंच और पीतल के है - "गले में नीले कॉंच के बारीक दानों की एक-आध लड़ी। बॉंहों में, घुटनोंपर, हाथों पर और पेट पर गुदना।"[59] जैकिसुन की परदादी का समूचा शरीर गुदनों से भरा था। "बलचनमा" उपन्यास के नायक बलचनमा की पत्नी सुगनी गौना करके आयी तो "गले में सुन्दर हँसली थी। बॉंहों में बाजूबन्द, कलाइयों में लाख की चूड़ियॉं। पैरों में गिलट के कड़े। दाहिने हाथ की दो अँगुलियों में पीतल की अँगूठियॉं---।" ऐसे और इतने ही आभूषण थे।

निष्कर्षतः ऐसा लगता है कि निम्नवर्ग इतना चूसा तथा लूटा गया है कि उनके पास न जमीन है न मकान, न वस्त्र, फिर बर्तन और गहने मिलना असंभव ही है। हाथ की अंजुली ही बर्तन है और धूप में कड़ी मेहनत से शरीरपर जमा होनेवाले स्वेद कण ही उनके आभूषण है।

दुर्भागी बाल - बच्चे :

गरीबी, अज्ञान और बेकारी का दुष्टचक्र बराबर चलता रहता है। प्रायः निम्न आर्थिक हैसियत के लोग बच्चों की संख्या के प्रति बेफिक्र रहने से उनके बच्चों की दशा करुणाजनक होती है। गरीब माता-पिता बच्चों की देखभाल और परवरिश इच्छा होते हुए भी ठीक ढंग से नहीं कर सकते। अतः बच्चे नंग-धडंग, अस्वच्छ तथा बीमार ही रहते है। "बलचनमा" उपन्यास के बलचनमा का पेट देखकर मलिकाइन कहती है - "छोकड़े का पेट तो देखो, कमर से लेकर गले तक मानो बखिया है। कैसा बडौल, कितना भयानक है ---।"[60] निम्नवर्गीय लोगों के बच्चों की खाने-पिने की फर्जीहत और अस्वच्छता बनी रहती है। "वरुण के बेटे" उपन्यास में खुरखुन के बच्चे बिना तेल में भुनी मछलियॉं

कुतर-कुतरकर खाते है। साथ ही "नाकों में नेटा-पोटा आँखो में कीचड़। धूलभरा सिर, रुखे-उलझे बाल। चूतड़ में और घुटनों पर घाव।"[61] बच्चों के बालों मे जूँए बिलबिलाते रहते हैं।

निम्नवर्गीय माता-पिता बच्चों के शिक्षा-दीक्षाका कोई उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। न उन्हें खेलने-दौड़ने के लिए खिलौने खरीद सकते है। खुरखुन के बच्चे बकरीकी सुखी मींगणियाँ, आम की गुटलियाँ और पत्थर के चौकोर टुकड़ों से खेलते है। "छः - साला लड़की बकरी की सूखी मींगणियों से छक्का-पंजा खेलने का रियाज कर रही थी।"[62] निम्न वर्ग में बड़े लोगों को बीमारी में उपचार नहीं मिल सकता है तो बच्चों की हालत और भी दयनीय है।

निष्कर्ष यह है कि गरीबों के बच्चों का भविष्य ही अन्धकारमय है। स्वयं अभिभावक ही आपत्तिग्रस्त होने से वे अपने सन्तानों को भावी संकटों के साथ लड़ने-झगड़ने का सामर्थ्य नहीं दे सकते है। परिणामतः सामाजिक अभिसरण न होकर समाज में निम्न-उच्च वर्ग बनाए रहते है। यह वर्ग भेद मिटाकर सामाजिक समता के लिए निम्नवर्गीय बच्चों को सुविधा देकर उन्हें सबल और स्वावलंबी बनाना अनिवार्य है।

कम तनख्वाह :

निम्नवर्ग के किसान और मजदूर प्रायः अनपढ़ तथा अकुशल होने से मजूरी ही करते है। इनके श्रम और समय का मालिक लोगोंद्वारा शोषण होता आया है। वे जितना श्रम करते है उसका मोबदला उन्हें नहीं दिया जाता। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के श्रम के साथ उच्च वर्ग द्वारा की गयी खिलवाड़ का मार्मिक चित्रण है। जमींदार तथा महाजन उन्हें कम तनख्वाह देकर अपने ऊँचे ठाठ-बाट के लिए रैयत को लुटने में किसी बात की कसर नहीं रखते।

"बलचनमा" उपन्यास के बलचनमा को जो चरवाहा है उसे मलिकाइन दुअन्नी के हिसाब से साल-भरका महीना डेढ़ रुपया देती थी। "खाना-पीना, लत्ता-कपड़ा और ऊपर से दो आना महीना।"[63] बलचनमा को कच्ची उम्र में, पसीने से लथपथ होकर मालिक का वजनी सूटकेस और बेडिंग पाँच मील दूर स्टेशन तक पहुँचने के बदले में दो पैसे मिलते है। मजदूरों को मजूरी में दिया जानेवाला अनाज भी अच्छा नहीं होता था। बलचनमा का अनुभव है - "दिन-भर काम कराके कच्ची तौल से तीन सेर खेसाड़ी या जौ या मडुआ मिलता। दाने हलके और कभी-कभी घुन लगे होते थे।"[64] मालिक लोगों के दिलमें मजदूरों के प्रति ममता न होकर अपने काम के प्रति चिन्ता रहती थी। मजूरी देने में ठगाई तथा लूट-पाट तो प्रायः होती थी। "वरुण के बेटे" उपन्यास का टुन्नी कोसी बाँधपर मजदूरी करने के लिए गया था कि "दस रोज बाँध की मजूरी करुँगा, खाना-खेवा निकालकर कम से कम अठारह आना-बीस आना रोज तो बचा ही लूंगा।---- मिट्‌टी काटते-ढोते बारह दिन बीत गए, छदाम का भी

दरसन नहीं हुआ।"[65] कांग्रेसी नेताओंने काम कर लिया लेकिन मजदूरी देते समय गायब हो गये। अतः टुन्नी को उधार देनेवाले दुकानदार को कुदाल, टोकरी ही नहीं अपनी धोती तक देकर खाली पेट भूखा वापस आना पड़ा।

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में नागार्जुन ने विशद किया है कि दुर्भिक्ष के दिनों में ब्रिटिश शासनद्वारा रेल लाईन का काम शुरु किया गया था। लेकिन रेल-कम्पनी ने लोगों की मजबूरी का फायदा ही उठाया। बाबा कहते है - "कम-से-कम मजदूरी पर ज्यादा-से-ज्यादा काम करने की वह अनोखी आपाधापी थी बेटा। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद एक दुअन्नी हाथ आती थी। चावल तो मिलते नहीं थे, जुन्हरी और मडुआ-जैसा मोटा अनाज मिलता था।"[66] "दुखमोचन" उपन्यास की मामी वेणीमाधव और दुखमोचन को समझाती है कि महारियों का हडताल ठीक ही है। कारण अब उन्हें छः आने माहवारी में काम करना मुश्कील है। मँहगाई और बदलते जमाने की बदलती जरुरतों के कारण मजदूरों को कम वेतन में जीना मुश्कील होता है, अतः उनकी अवस्था निम्न दर्जा की होती है।

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग की आर्थिक अवस्था शोचनीय है। जब तक किसान-मजदूर पारंपारिक शोषण से मुक्त नहीं होता और उसके श्रम का पुरा-पुरा मोबदला चुकाया नहीं जाता तब तक उसकी दशा गयी-बिती ही रहेगी। नागार्जुन जी शोषण से मुक्त, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी और समृध्द किसान-मजदूरों की दुनिया के आकांक्षी उपन्यासकार है।

सदा ऋण में :

नागार्जुन के उपन्यासों का निम्नवर्ग प्राकृतिक आपत्तियाँ, बीमारियाँ, विवाह-उत्सव, बैल आदि जानवरों की अचानक मृत्यु तथा हर-दिन के पेट भरण की समस्या से मजबूर होकर कर्ज लेने को विविश होता है। कर्ज के लिए उसे साहूकार के यहाँ जमीन-घर-बरतन-आभूषण आदि गिरवी रखने पड़ते है। अनपढ़ लोगों को फँसाकर महाजन सूद-दर-सूद बढ़ाकर उसकी जमीन-जायदाद हड़पा लेते है। वक्त पर कर्ज और सूद वापिस न देनेसे साहूकार अपने पालतू गूंडोंद्वारा अमानवीय अत्याचार करते है। "बलचनमा" उपन्यास में बलचनमा की माँ ने मझले मालिक से बारह रुपये कर्ज में लिए थे। माँ-बेटा जिन्दगी भर सूद देते रहे लेकिन मूल रक्कम जैसी की वैसी रह गयी थी।

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास के जीवनाथ के दादा शत्रुमर्दनराय के बापने राजाबहादुर रमादत्त सिंह से तीस रुपये सूद पर लिये थे। बाप कर्ज की रक्कम नहीं चूका सका। सूद के कारण कर्ज की रक्कम मोटी होती गयी। अतः बेटा शत्रुमर्दन राय अपनी जमीन गिरवी में रख लेने की बिनती करता है लेकिन जमींदार उस पर अमानवीय अत्याचार करते है और बेचारा बेहोश होकर गिरता है। निष्कर्षतः ऋण की जंजीर में कैद निम्नवर्ग नारकीय यातनाएँ सहन करने के लिए विवश है। उसकी

आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाकर जमींदार-महाजन उसे बरबाद करने के लिए तूले रहते हैं। कर्ज की खाई कडी मेहनत के बाद भी गहरी होती जाती है और उसमें किसान-मजदूर सदा के लिए डूब जाता है।

कंजूषी का आचरण :

अर्थाभाव के कारण निम्नवर्ग के लोग खुले हाथ से खर्च नहीं करते है। खान-पान, रहन-सहन भी साधारण ही होती है। कारण उन्हें अधिक खर्च तथा विलास-मौज करने की सहुलियत नहीं होती। शादी-ब्याह में अनावश्यक खर्चा टालते रहते है। "बलचनमा" उपन्यास में अपनी आपबीती में बलचनमा कहता है - "गरीब-गुरबा का बिआह-गौना शाहखर्ची में नहीं, सादगी में ही होता आया है।" यहाँ तक कि घर की औरतें भी पुरुषों के काम-काज में हाथ बँटाती है। "वरुण के बेटे" उपन्यास के खुरखुन की पत्नी बीमार पड़नेपर घरमें ठीक ढंग की साफ सुपरी साडी होते हुए भी चिथड़ानुमा, तार-तार हुओ साड़ी जो अब एक दिन भी पहननेलायक नहीं रह गयी है उसे पहनकर अस्पताल जाना चाहती है। तब बेटी मधुरी ने संदूकची में सहेजकर रखी तीन-चार साड़ियों से एक निकालकर माँ को पहनने को कहा, तो नकार देते हुए बेटी पर ही खीजती है - "छिनाल कहीं की। क्या बिगड़ता है। मैं ऐसी ही जाऊँगी।"[68] "रतिनाथ की चाची" उपन्यास की चाची आठ-दस घंटा चर्खा और तकली कातकर पचीस-तीस रुपये पाती है। लेकिन अपने खाने में बहुत ही कम खर्च करती है और बेटे उमानाथ की शादी में दो सौ रुपये की मदद करती है। "दुखमोचन" उपन्यास का रामसागर भूमिहर खानदान का गरीब किसान था। खेत थोड़े थे, किसी तरह गुजारा होता था लेकिन उसकी पत्नी शीलवन्त और सयानी होने से किफायत में निभा लेती थी।

निष्कर्षतः हमें लगता है कि आचरण में किफायती किये बिना निम्नवर्ग के लोगों को जीवन-यापन करना मुश्कील होता है। खर्चीलेपन में कंजूषी उनके स्वभाव का दोष न होकर प्राप्त परिस्थिति के साथ समझौतेका एक तरिका है। नागार्जुन के उपन्यास के निम्नवर्गीय पात्र स्वावलम्बन तथा स्वाभिमान के आकांक्षी होने से वृथा खर्च टालते दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष :

पेट आदमी को जहाँ तक गिराये उतना कम ही है। निम्नवर्ग के लोगों में आर्थिक विवशता के कारण ही दासता तथा लाचारी का भाव स्थायी बनता है। नागार्जुन के उपन्यासों का निम्नवर्ग आर्थिक विकलता के कारण हतबल है लेकिन उदास तथा पराजित नहीं दिखाई देता है। वह सामाजिक विषमता और आर्थिक प्रतिकूलता से बराबर साहस के साथ जूझता है। विपत्तियों और

मजबूरियों से ड़रकर पलायनवादी तथा निराशावादी बनना उसकी प्रवृति-नीति नहीं है। मजदूर वर्ग अपनी निम्न स्थिति में भी आर्थिक स्वावलम्बन का प्रयत्न कर श्रम और सम्मान से कमाई की रोटी खाना चाहता है। नागार्जुन ने निम्नवर्गीय जनता को आर्थिक-सामाजिक संघर्षों में घुटते हुए देखा है और स्वयं भी इसको भोगा है, अतः उन्होंने आर्थिक समस्याओं पर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार किया है। शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के लिए जाग्रत कर उनके संगठन और शक्ति के द्वारा अर्थव्यवस्था का ढ़ाँचा ही बदलना चाहते हैं।

संदर्भ सूची :

1. स्मारिका : महाराष्ट्र हिन्दी परिषद - 1993 (चतुर्थ अधिवेशन, औरंगाबाद) डॉ. ह.श्री. साने (आज का साहित्य : विविध आव्हान) पृ. 34.
2. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1985, पृ. 112.
3. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ.137
4. वही: पृ. 139
5. दुखमोचन : नागार्जुन, संस्करण 1981 (राजकमल), पृ. 16
6. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 80
7. वही : पृ.81
8. दुखमोचन : नागार्जुन, संस्करण 1981 (राजकमल), पृ. 12
9. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 54
10. वही : पृ. 56
11. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1985, पृ. 83
12. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 20
13. वही : पृ. 43
14. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 20-21
15. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 16
16. उग्रतारा : नागार्जुन, चौथा सं. 1977 (राजकमल), पृ. 31
17. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं (वाणी) 1985, पृ.8
18. वही : पृ. 54
19. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 144
20. दुखमोचन : नागार्जुन, संस्करण वर्ष 1981 (राजकमल), पृ. 117
21. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ.54
22. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 71-72
23. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 140
24. हिन्दी उपन्यास : डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ. 315
25. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1985, पृ. 84-85
26. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र. सं. (वाणी) 1984, पृ. 34

27. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 13

28. वही पृ.165

29. वही : पृ. 63

30. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1985, पृ.85-86

31. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 47

32. जमनिया का बाबा : नागार्जुन प्र.सं. 1968 (किताब म.), पृ. 103

33. उपन्यासकार नागार्जुन : बाबूराम गुप्त, प्र.सं. 1985, पृ. 143

34. बलचनमा : नागार्जुन, प्र. सं. 1989 (वाणी), पृ. 17

35. वही पृ. 47

36. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 46

37. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ.12-13

38. वही पृ. 59

39. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र. सं. (वाणी) 1985; पृ. 83

40. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 51

41. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 47

42. वही, पृ.164

43. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 58

44. वही पृ. 60

45. वही पृ. 83

46. वही पृ. 83

47. उग्रतारा : नागार्जुन , चौथा सं. 1977 (राजपाल), पृ. 62

48. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1985, पृ.84-85

49. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 140

50. कुंभीपाक : नागार्जुन, तृतीय सं. 1978 (राजपाल), पृ. 50

51. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : प्रकाश वाजपेयी, पृ. 125

52. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 9

53. वही : पृ. 110

54. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 55

55. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र. सं. (वाणी) 1984, पृ. 13

56. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 37

57. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 14

58. वही : पृ. 80

59. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 37

60. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 6

61. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ.24

62. वही : पृ. 46

63. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 7

64. वही : पृ. 23

65. वरुण के बेटे : नागार्जुन प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 42-43

66. बाबा बटेसानाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 62

67. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 97

68. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र. सं. (वाणी) 1984, पृ. 81